द्वितीय अध्याय

रांगेय राघव के आलोच्य उपन्यासों की पृष्ठभूमि

अ) ' कब तक पुकारूँ ' उपन्यास की पृष्ठभूमि.
प्रस्ताविका, अर्थ, परिभाषाएँ, पृष्ठभूमि.

आ) ' मुर्दो का टीला ' उपन्यास की पृष्ठभूमि.
प्रस्ताविका, परिभाषाएँ, पृष्ठभूमि.

निष्कर्ष.

द्वितीय अध्याय

" रांगेय राघव के आलोच्य उपन्यासों की पृष्ठभूमि "

अ) " कब तक पुकारूँ ' उपन्यास की पृष्ठभूमि.

प्रस्ताविका

स्वाधीनता प्राप्ती के पश्चात् भारतीय साहित्य, विशेषता हिंदी साहित्य जगत् को दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण माना जा सकता है । एक ओर हिंदी साहित्य की हर विधा में साहित्यकारों ने जीवन के यथार्थ की गहराई में जाकर तथा भोगे हुए जीवन सत्य को प्रस्तुत किया तथा दूसरी ओर हमारे देश के शोषित, उपेक्षित एवं उत्पीड़ित आँचलो का बड़े ही सजीवता के साथ चित्रण किया । आँचलों की ओर साहित्यकारों का ध्यान जाना स्वाभाविक तथा महत्वपूर्ण था, क्योंकि हमारा भारत देश भिन्न - भिन्न विचारधाराओं, धर्मो, संस्कृतियों, जातियों और वेशभूषाओं का भण्डार है । अतः प्रकृति एवं विभिन्न जन - जातियों के जीवन को चित्रित करने के उद्देश्य से आँचलिक उपन्यासों का सृजन हुआ है ।

आँचलिक उपन्यास : अर्थ एवं परिभाषा

अर्थ.

मूलतः ' अंचल ' शब्द संस्कृत शब्द ' अञ्चल ' है । इसकी व्युत्पत्ती व्युत्पत्ति ' अंच ' धातु में ' अचल् ' प्रत्यय के योग से हुई है । इसके अर्थो का उल्लेख संस्कृत एवं हिंदी के कोशों मे इस प्रकार किया गया है ।

1) " देश का एक भाग या प्रान्त जो सीमा के समीप हो । " [1]

2) " साड़ी का छोर जो सामने रहता है, पल्ला, अम्बर या आचरा, किनारा एवं सीमा का सीमावर्ती भाग । " [2]

3) " किसी क्षेत्र का कोई पार्श्व या आंचल ।" [3]

4) वस्त्र प्रान्त भागः । अंचल इतिभाषा । " [4]

आँचलिक शब्द ' अंचल ' शब्द में तद्धित - 'इक' प्रत्यय के योग से बनता है । इसका अर्थ है - एक विशिष्ट भूखण्ड या एक विशेष क्षेत्र , देश का प्रान्त । यह भौगोलिक ही नहीं बल्कि जिसकी जीवन की अपनी कुछ विशेषताएँ हो जो सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक दृष्टी से अपने आपमें एक इकाई हो । इसे दूसरे रूप में देखा गया है । अंचल का अर्थ है - विशिष्ट क्षेत्र या जनपद । उस अंचल विशेष के अपने सुख:दुःख, रीति - रिवाज, परम्पराएँ, रहन - सहन, जीवन प्रणाली होती है । अतः विद्वानों ने आँचलिक उपन्यास की अलग - अलग परिभाषाएँ प्रस्तुत की है । कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्नांकित है -

परिभाषाएँ

1) डॉ. रामदरश मिश्र

" आँचलिक उपन्यास के समग्र जीवन का उपन्यास है, उसका सम्बन्ध जनपद से होता है । " [5]

2) डॉ. गोविंद त्रिगुणायत

" जिस उपन्यासों में स्थान विशेष के सम्पूर्ण वातावरण का सांग सांश्लिष्ट और निष्कपट रूप से समस्थ स्थानिय विशेषताओं के साथ चित्र प्रस्तुत किया जाता है, उन्हें आँचलिक उपन्यास कहते है । " [6]

3) श्री. धनंजय वर्मा

" उपन्यासों में लोकरंगों को उभारकर किसी अंचल विशेष का प्रतिनिधित्व करनेवाले उपन्यासों को आँचलिक उपन्यास कहा जाएगा । "[7]

4) डॉ. शशिभूषण सिंहल

" उपन्यास जब क्षेत्र विशेष, अंचल की लोक संस्कृति से बंधकर स्थानिक रंगत से मुक्त जीवन प्रस्तुत करता है, उसे आँचलिक उपन्यास की संज्ञा प्राप्त होती है।"[8]

5) राधेश्याम शर्मा ' कौशिक '

" आँचलिक उपन्यास का प्रणेता आँचलिक संस्कृति का आँखो देखा चित्रण करता है । उसमें यथार्थ की स्थिती महत्वपूर्ण और विश्वसनीय होती है । " [9]

6) मानविकी परिभाषा कोश

" कुछ लोगों की यह प्रवृत्ति विशेष, जिसके अन्तर्गत उनकी कृतियों की पृष्ठभूमि में राष्ट्र का कोई अंचल विशेष रहता है, जिसका विस्तृत वर्णन उसके निवासियों के जीवन और व्यवसाय, व्यवहार आदि के समेत उसमें समाविष्ट रहता है । " [10]

प्रस्तुत आँचलिक उपन्यास की परिभाषाओं में लगभग समान बातों को दुहराया गया है । इसमें केवल शब्द भेद है । यह स्पष्ट होता है कि, ' अंचल ' शब्द से बोध होता है - उपेक्षित भूखण्ड, कोई गाँव या देहात' जहाँ का लोकजीवन और भूमि सर्वथा अपरिचित और उपेक्षित है । वह शहर की भाग-दौड़, आपाधापी, कोलाहल से दूर है ।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास - साहित्य में सर्वथा नई विधा के रूप में आँचलिक उपन्यास का विकास हुआ है । हिंदी उपन्यास जगत् में सर्वप्रथम ' आँचलिक ' शब्द का प्रयोग फणिश्वरनाथ ' रेणु ' के ' मैला आँचल ' उपन्यास की भूमिका में किया है, जो उपन्यास सन् 1954 में प्रकाशित हुआ ।

हिंदी के आँचलिक उपन्यासों को प्रधान दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । पहले प्रकार के उपन्यासों में किसी विशिष्ट अंचल के जन-जीवन का चित्रण रहता है । जैसे फणिश्वरनाथ ' रेणु ' के ' मैला आँचल ' और ' परती परिकथा ', देवेंद्र सत्यार्थी का ' ब्रम्हपुत्र ', नागार्जुन के ' रतिनाथ की चाची ' ' बचलनमा ' ' बाबा बरेसरनाथ ', रामदरश मिश्रा का ' पानी के प्राचीर ', डॉ. रांगेय राघव के ' धरती मेरा घर ', ' काका ', शिवप्रसाद सिंह का ' अलग - अलग ' ' वैतरणी ' आदि । दूसरे प्रकार के उपन्यासों में कोई उपेक्षित, अपरिचित आदिम जातियों का चित्रण होता है । जैसे - देवेंद्र सत्यार्थी का ' रथ के पहिए ' डॉ. रांगेय राघव का ' कबत तक पुकारूँ ' उदयशंकर भट का ' सागर लहरे और मनुष्य ' आदि उपन्यास महत्वपूर्ण है ।

" कब तक पुकारूँ " उपन्यास की पृष्ठभूमि

आँचलिक रचनाएँ और अन्य रचनाओं में तात्विक दृष्टी से स्पष्ट अंतर दिखाई देता है । अन्य रचनाओं में चरित्रों के मनोविश्लेषण से जीवन के भीतर तक देखा जाता है या सामाजिक धरातल पर जीवन के किसी सत्य, समस्या का उद्घाटन या विरोध किया जाता है । आँचलिक जीवन के पात्र भले ही मनोवैज्ञानिक पात्र न हो, या अपने वैयक्तिकता की पहचान न बन सके लेकिन अपने व्यक्तित्व से अंचल की पहचान निश्चित बनती है । प्रकृति के अंचल में रहनेवाले लोगों को ग्रामीण कहा जाता है । अतः ये लोग सुसंस्कृत एवं सभ्य लोगों के प्रभाव से अछुते हैं । आँचलिक उपन्यासों की पृष्ठभूमि किसी निश्चित, स्थिर स्थान पर गतिमान समय में जीवन बिताते हुए अंचल के व्यक्तित्व के समग्र पहलुओं का उद्घाटन करने से बनती है ।

" स्वातंत्र्योत्तर भारत के आँचलिक जीवन के परम्परागत स्वरूप में आनेवाले परिवर्तनों, ग्रामीण जनता की आशा - आकांक्षाओं, आवश्यकताओं, लोककल्याणी राज्य द्वारा संचलित विविध योजनाओं एवं कार्यक्रमों से ग्रामीण जनता की उपलब्धियों तथा उनके मार्ग में आनेवाली बाधाओं का काल्पनिक निरूपण आँचलिक उपन्यास की पृष्ठभूमि के मुख्य घटक है । " ||

डॉ. रांगेय राघव मार्क्सवादी थे । उनका ' कब तक पुकारूँ ' उपन्यास आँचलिक कोटी का उपन्यास है । उन्होंने पुष्टि की है ... " ... पर भारत गाँव में है, जो आज भी मध्यकालिन विश्वासों से ग्रस्त है । वे विश्वास मध्यकालीन आर्थिक व्यवस्था से नियंत्रित है । मैंने उनको स्पष्ट करने का यत्न किया है । " [12]

डॉ. रांगेय राघव जीने ' कब तक पुकारूँ ' इस आँचलिक उपन्यास में राजस्थान की आदिवासी जरायमपेशा करनट जाति का सुन्दर अनोखा आँचलिक जीवन चित्रित किया है । यह उपन्यास राजस्थान के भरतपुर जिले के ' वैर ' नामक ग्राम से सम्बन्धित है जो आगरा के नजदीक और बयाने से थोड़ी दूरी पर है । आँचलिक उपन्यासों में निश्चित क्षेत्र या ग्रामीण जीवन होता है, अपरिवर्तनीय प्रकृति होती है । सामान्यतः स्थिर जातियों या टोलियों का जीवन - यापन, ये आँचलिक उपन्यास की विशेषताएँ ' कब तक पुकारूँ ' इस उपन्यास में नियोजित नहीं किये । इसमें चित्रित जाति जरायमपेशा है, जो एक क्षेत्र में स्थिर नहीं है । यह इस उपन्यास का बाधक तत्व है । फिर भी इस उपन्यास में ऐसा कुछ है, जिस कारण आँचलिक उपन्यासों में ' कब तक पुकारूँ ' अमर कृति बन गयी है । वो है जरायमपेशा करनटों के जीवन का अछूता, अपहचाना, अनदेखा, अपरिचित चित्रण ।

उपन्यासकार ने करनट जाति के जीवन चित्रण को आलोच्य उपन्यास का आधार बनाया है । साथ-ही साथ अन्य जन-जातियों का भी संक्षेप में वर्णन किया है । जैसे - चमारों की बस्ती, ठाकूर, ब्राम्हण, बनिये आदि । किन्तु उपन्यासकार की दृष्टी करनट जाति के वर्णन पर ही रही है । विभिन्न जातियों के पारस्पारिक संघर्ष का गहराई से विश्लेषण नहीं किया है । चित्रित करनट जाति को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है - खानाबदोश और जरायमपेशा । करनट जाति खानाबदोश होती है । यह जाति किसी एक प्रदेश में या एक स्थान पर स्थिर नहीं रहती । लेकिन जहाँ करनट जाति के लोगों का समूह होता है, वहाँ यह जाति चली जाती है । इनके पास रहने के लिए न घर है, न खेती - बाड़ी, न ही व्यवसाय का कुछ साधन है । करनट जाति के लोग खेल दिखाते हैं, चोरी करते हैं, शहद और जड़ी - बुटी इकठ्ठा करके बेचते है । इनकी

औरतें अपनी देह की विक्री करती है । यही इनके जीवन - यापन का प्रमुख साधन है ।

करनट जाति संस्कार और शिक्षा से वंचित है । यह जाति इतनी पिछड़ी हुई है कि अभी तक इनमें शिक्षा का प्रसार नही हुआ है । इसी कारण वहाँ स्थित सभ्य समाज - ठाकूर, पुलिस, ब्राम्हण, बनिये, इन लोगों की अशिक्षा का लाभ उठाकर उन्हे ठगने में सफल हो जाते हैं । ये लोग करनटों पर जुल्म करते हैं । स्वयं कुछ अपराध करके इन बेगुनाह करनटों पर इल्जाम लगाकर उन्हें सजा भुगतने के लिए विवश करते हैं । सभी तरफ से करनट जाति सभ्य समाज से उत्पीड़ित है । यह जाति जातिवाद में आस्था रखती है । भारतीय समाज में जाति व्यवस्था की नीव इतनी दृढ है कि ऊँची जाति के द्वारा किये गये अन्याय, अत्याचार, जुल्मो को बेझिझक सहने की आदत नीच जाति को पड़ जाती है । शायद ही इन जातियों के लोगों के मन में कटुता, हिंसा और विद्रोह की भावना निर्माण होती है । इन लोगों के पास शक्ति होती है, संघटन होता है, उच्च वर्ग के जुल्मों के खिलाफ लड़ने की हिम्मत नहीं जुटा पाते । इस कारण उन्हें लाचार जिन्दगी जीनी पड़ती है । करनट जाति ऐसे ही नीच जाति है । आलोच्च उपन्यास में चित्रित प्यारी, कजरी कुछ दिन बेबस जिंदगी जीती है । किन्तु बाद में वे चेतित हो जाती है । अत्याचारियों के खिलाफ संघर्ष करती है । दोनों मिलकर बाँके और रूस्तमखाँ का काम तमाम कर देती है । थूपो की मृत्यु के पश्चात् चमार और सुखराम सामन्तवादी शक्तियों के विरूद्ध विद्रोह करने लगता है ।

डॉ. राघवजी की मान्यता है कि ईसा के पूर्व युनान में ' पेशन ' जातियाँ थी जिसे असभ्य कहा जाता था । इनकी औरतों में ' नैतिकता ' नही होती । ये नारियाँ ' सेक्स ' में स्वतंत्र होती है और सभ्य समाज से दूर है । उपन्यासकार ने लिखा है ... मैंने इनकी नैतिकता को समाज का आदर्श बनाकर प्रस्तुत नही किया है, बल्कि पाठकों को इससे सेक्स को ऐसी जानकारी के रूप में हासिल करना चाहिए कि यह इनमें होता है । यह सारा खानाबदोश समाज घोर उत्पीड़ित है । न इनके सामाजिक शाश्वत है, न हमारी नैतिकता के बन्धन ही शाश्वत । " [13]
करनट जाति में सेक्स के आधारपर कोई बुराई नहीं मानी जाती । नारियाँ किसी भी पुरूष से शरीर सम्बन्ध स्थापित कर देती है । इस पर कोई निर्बन्ध नही है । पुरूष और नारियों को बहुविवाह करने का अधिकार है ।

जब चाहे विवाह बन्धन को आसानी से तोड़ देते है । करनटों में नारी को विधवा नहीं रखा जाता । ये नारियाँ पुरूषों की गुलाम बनकर नहीं रहती बल्कि स्वच्छंदता से रहती है । ये नारियाँ माँ होने का दावा तो करती है, लेकिन बच्चे का असली पिता कौन है यह बताना उनके लिए बहुत ही मुश्किल है । इस जाति की लड़की जब जवान हो जाती है तब उसे पहली रात ठाकुरों के यहाँ बितानी पड़ती है । उसके पश्चात् ही इसे यह जाति अपना लेती थी । इनकी औरतों का अनेक पुरूषों से यौन सम्बन्ध होने से अनेक बीमारियों का सामना इस जाति के लोगों को करना पड़ता है । करनट जाति के स्त्री - पुरूष के मन में अपनी संतान के प्रति वही स्नेह होता है, जो किसी अन्य जातियों के माँ-बाप के मन में अपने संतान के प्रति होता है । मगर आर्थिक अभावों के कारण वे अपने बच्चों पर अच्छे संस्कार नहीं कर पाते । बच्चे भी माँ - बाप के पथ पर चलने के लिए विवश हो जाते हैं । पेट के लिए जो भी कार्य किया जाता है उसे करनट जाति के लोग अनुचित या अनैतिक नहीं मानते ।

उपन्यासकार ने यह बताने का प्रयास किया है कि, आलोच्य उपन्यास की कथा काल्पनिक नहीं, प्रत्यक्ष घटित है । अनुभूतियों की प्रामाणिक भित्ती ही इसका आधार है । राघवजी ने स्वयं लिखा है - ' जो कुछ सुखराम ने कहा था, वह लिख रहा हूँ । इसमें अनुभूतियों की गहराईयों के वर्णन स्पष्ट ही मेरे हैं, सुखराम के नहीं । '[14] राजस्थान की करनट जाति उपेक्षित, शोषित एवं उत्पीड़ित जाति है । उच्च वर्ग के लोग उनका शोषण करते है । बेरहमी से उनके साथ पेश आते हैं । स्वाधीनता प्राप्ती के पश्चात् इन लोगों में परिवर्तन आया है । करनट जाति के लोग अब बड़े शहरों में बस गये हैं । सरकार ने अब जरायमपेशा कानून बनाया है, जिससे किसी भी व्यक्ति को बिना वजह से गिरफ्तार नहीं किया जा सकता । उपन्यासकार ने स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व करनटों के जीवन को प्रस्तुत किया है । केवल करनट जाति पर ही नहीं बल्कि सभी अछूत जातियों पर अन्याय, अत्याचार किये जाते थे । स्वाधीनता प्राप्ती से पहले और पश्चात् भी इन लोगों के सामने जीवन की सुरक्षा और पेट भरने की समस्या खड़ी है । अब भी ये लोग अंधविश्वासों की शृंखला में जखड़े हुए हैं । जैसे - पुर्नजन्म, भूत-प्रेत, जादूटोना आदि । आलोच्य उपन्यास की कथा ज्यादातर पुर्नजन्म पर आधारित है, ऐसा लगता है ।

करनट जाति के रस्म - रिवाज, खान-पान, वेशभूषा, भाषाशैली, उन लोगों का शोषण, उन पर होने वाले जुल्म, उनकी शोषिकता, उनकी मानसिक द्विविधा, उनके प्रति समाज का दृष्टिकोण आदि के आधार पर डॉ. राघवजी ने ' कब तक पुकारूँ ' उपन्यास का सृजन किया है ।

आ) " मुर्दो का टीला ' उपन्यास की पृष्ठभूमि

प्रस्ताविका

डॉ. रांगेय राघव सजग साहित्यकार है । उनकी विचारधारा प्रगतिशील थी । वे मार्क्सवादी थे लेकिन मार्क्सवाद के बारे में अंधानुयायी नहीं थे । राघवजी भारतीय मनुष्य के संस्कार और इतिहास को ध्यान में रखते हुए उसके भविष्य के बारे में निर्णय लेते थे । वे वर्तमान और अतीत के बीच में सेतु के रूप में स्थिर थे ।

" मुर्दो का टीला ' राघवजी का ऐतिहासिक कोटि का उपन्यास है । मानव-जीवन की अनुभूतियाँ और संवेदनाओं का चित्रण उपन्यास में रहता है । इतिहास में भौतिक सच्चाई प्रस्तुत होती है जबकि उपन्यास में कल्पना को प्राधान्य दिया जाता है । इतिहास और वर्तमान का तथा यथार्थ और कल्पना का सुन्दर सन्तुलित समन्वय ऐतिहासिक उपन्यासों में देखा जाता है । ऐतिहासिक उपन्यास के लिए यह आवश्यक है कि, इतिहास वर्तमान के लिए ही है । अतः वह इतिहासकार की तरह बीती बातों को यथातथ्य पुनः प्रस्तुत नहीं करता बल्कि वह सर्जक के दायित्व को अच्छी तरह समझकर उन्हे मानवीय सत्य से जोडता है ।

डॉ. जगदीश गुप्त ने ऐतिहासिक उपन्यास के निर्माण के मूल प्रेरणास्त्रोत के बारे में लिखा है कि उपन्यासकार सात भावनाओं से प्रेरित होकर इतिहास की ओर प्रवृत्त हुए -- " वर्तमान से पराजित अथवा असन्तुष्ट होने के फलस्वरूप पलायन की भावना, अतीत को वर्तमान से अधिक श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण समझते हुए उनके पुर्नसंस्थापन की भावना, कतिपय ऐतिहासिक पात्रों या घटनाओं के प्रति न्याय की भावना वर्तमान को शक्तिशाली बनाने के लिए अतीत से उपजीव्य

खोजने की भावना, इतिहास - रस में लिप्त रहने की सहज भावना, जातीय गौरव, राष्ट्र प्रेम, आदर्श स्थापना तथा वीर पूजा की भावना, जीवन की किसी व्याख्या को प्रस्तुत करने की भावना । " [15]

" इन भावनाओं में से कोई एक या कई संयुक्त होकर अथवा गौण स्वरूप से प्रेरणा देते हुए ऐतिहासिक उपन्यास का बीज प्रस्तुत कर सकती है । आलोचक ने इन सात भावनाओं का वर्गीकरण लेखकों की रचनाओं के आधारपर किया है । हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रणयन, राष्ट्रीय जागरण, तथा स्वतंत्रता आन्दोलन के समानान्तर हुआ । इसलिए उनमें आत्माभिमान, राष्ट्रप्रेम तथा वीरपूजा की भावना प्रधान रूप से मिलती है । इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप, हिन्दी के प्रथम सफल ऐतिहासिक उपन्यासकार डॉ. वृन्दावनलाल वर्मा की कृतियों में राष्ट्रीयता, वीरता, कर्तव्यनिष्ठा, व्यक्तिगत त्याग एवं बलिदान तथा समाज - मंगल के स्वर मुखरित होते है । आचार्य चतुरसेन शास्त्री और डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में मानवतावादी जीवन-दर्शन का निरूपण हुआ है । इस परम्परा से भिन्न ऐतिहासिक उपन्यास। जगत् में एक दूसरी प्रवृत्ति समाजवादी स्थनओं की है, जिसमें मार्क्सवादी विचारधारा के आधारपर अतीत का विवेचन एवं विश्लेषण हुआ है । है । " [16] इस परम्परा के प्रमुख उपन्यासकार यशपाल, राहुल सास्हत्यायन और डॉ. रांगेय राघव है । इनकी कृतियों में अतीत गणतंत्र की व्यवस्था, गौरव गाथा चित्रित हैं, जो देश में गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली की स्थापना को स्पष्ट करती है । जिसमें आधुनिक शासन - व्यवस्था की विषमता के स्थानपर समता स्थापित करने के लिए तथा प्राचीन समस्याओं को लेकर उनका समाधान मार्क्सवादी दृष्टी से किया है ।

ऐतिहासिक उपन्यास के लिए यह अत्यावश्यक है कि उसमें ऐतिहासिकता की पूर्णरूप से रक्षा की गई हो । वातावरण की स्थापना भी ऐतिहासिक उपन्यास के लिए अनिवार्य है । चाहे किसी भी ऐतिहासिक युग की कथा हो मगर उस युग की पृष्ठभूमि एवं विवरण ऐतिहासिक कथा से विकास के लिए आवश्य है । ऐतिहासिक उपन्यासकार को वातावरण एवं कथानक का निर्माण करते व्यक्त ऐतिहासिकता पर पूरा ध्यान देना पड़ता है । किसी भी हालत में प्रचलित ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़ा - मरोड़ा नहीं जा सकता । ऐतिहासिक उपन्यासकार को पात्रों का ढाँचा, पात्रों का वार्तालाप, सम्बन्धित वातावरण, इतिहास से प्राप्त होता है । वह पात्रों में कल्पना की सहायता से

प्रभावात्मकता निर्माण करता है । लेकिन उपन्यासकार को इस बारे में भी सतर्क रहना पड़ता है कि, पात्रों की वेशभूषा खान-पान, वार्तालाप उस काल की संस्कृति, सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्था के अनुरूप है, उसमें आधुनिकता न हो । अगर आधुनिकता के अनुरूप इन सब का चित्रण किया तो ऐतिहासिक उपन्यास प्रभावहीन और हास्यास्पद होगा । इसका अर्थ यह नही है कि, पात्रों को सीधे इतिहास से लेकर उपन्यास में रखा जाता है, बल्कि उपन्यास का अपना संसार होता है, जो वास्तविक जगत् से अलग होता है । इतिहास कुछ सीमाओं में आबद्ध रहता है । अतः इन सीमाओं का उल्लंघन नहीं किया जा सकता । " निश्चय ही पात्रों के अपने राजनीतिक विचार हो सकते है और होने भी चाहिए किन्तु शर्त यह है कि वे पात्रों के अपने विचार हो, लेखक के विचार नहीं । कभी - कभी यह भी हो सकता है कि किसी पात्र के विचारों में और लेखक के विचारों में कोई अंतर न हो, किन्तु ऐसी स्थिती में भी उन्हे पात्र की ही आवाज में प्रकट होना चाहिए । इससे यह परिणाम यह निकलता है कि उस पात्र की अपनी नीजी आवाज उसका अपना व्यक्तिगत इतिहास होना चाहिए । " [17] ऐतिहासिक उपन्यास के पात्र अपने साथ एक विशिष्ट युग का विशिष्ट वातावरण को लेकर आते हैं । इतिहास का सत्य कठोर एवं अपरिवर्तनीय होता है तथा उपन्यास का सत्य कल्पना मिश्रित एवं भावमय होता है । अतः इन दोनों विरोधी तत्वों का समन्वय करके घटनाओं एवं कल्पनाओं के सन्दर्भ में ऐतिहासिक उपन्यासकार को नया चित्र खींचना पड़ता है । अतः इसके लिए उपन्यासकार के पास अपार कल्पनाशक्ति और अध्ययन की क्षमता होनी चाहिए । कठोर परिश्रम करने की आवश्यकता होती है । इस कारण ऐतिहासिक उपन्यासों की संख्या साहित्य जगत् में कम है । ऐतिहासिक उपन्यास के परिभाषाबद्ध करने की कोशिश कई विद्वानों ने की है । वे परिभाषाएँ निम्नांकित है --

परिभाषाएं

।) डॉ. जगदीश गुप्त

" ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास और कथा की पुरातन समीपता की नूतन समन्वयात्मक अभिव्यक्ती है, जिसके पीछे युग-युग के अतीतोन्मुखी संस्कार निहित है । उसकी उत्पत्ति विगत

और आत्मविस्तार की आन्तरिक भावनीय वृत्ति से हुई है । कथा की कोई भी कल्पना विगत अथवा ऐतिह् से उसी प्रकार अपने को सर्वथा मुक्त नहीं कर सकती जिस प्रकार इतिहास अपने को कल्पना से पृथक नहीं कर सकता । " [18]

2) डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी

" साधारणतः ऐसे उपन्यास - जिसमें अतीत कालीन पात्र, वातावरण और घटनाओं के ज्ञान, तथ्यों को कल्पना से मांसल और जीवन्त बनाकर रखने का प्रयास होता है, ऐतिहासिक उपन्यास कहते हैं । " [19]

ऐतिहासिक प्रामाणिकता के सुन्दर एवं अनुठे उदाहरण वृन्दावनलाल वर्मा के पश्चात् डॉ. रांगेय राघवजी के उपन्यासों में ही मिलते हैं ।

" मुर्दो की टीला " उपन्यास की पृष्ठभूमि

हिंदी साहित्य के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में डॉ. रांगेय राघव का स्थान महत्वपूर्ण है । सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक उपन्यासों में उन्होंने साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, शोषण, स्वार्थी मनोवृत्ती आदि की कड़ी भर्त्सना की है । उनके उपन्यासों के विषय प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक है । अपने ऐतिहासिक सत्य के विषय में राघवजी लिखते हैं, - ' मेरे सामने इतिहास है, जीवन है, मनुष्य की पीड़ा है और मनुष्य की वह चेतना जो निरन्तर अंधकार से लड़ रही है । और इससे बढ़कर अभी तक कोई सत्य मेरे सामने नहीं आया है । " [20] राघवजी ने ऐतिहासिक तथ्यों को संश्लेषणात्मक और विश्लेषणात्मक करने की प्रवृत्ती, विवेक, ऐतिहासिक दृष्टी, दूरदर्शिता आदि क्षमताएँ है । इसी के आधार पर उन्होंने प्राचीन, नवीन, वैदिक, पौराणिक इतिहास को सफलता के साथ अंकित किया है ।

डॉ. राघवजी का ' मुर्दो का टीला ' एक अनूठा और प्रागैतिहासिक उपन्यास है ।

राघवजी ने मोअन - जो - दड़ो के समय के अज्ञात, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक जीवन तथा प्रागैतिहासिक घटनाओं के आधार पर यह उपन्यास लिखा है । प्राचीन काल में आज की तरह इतिहास लिखने की सुविधा नहीं थी । उस काल की कोई वस्तु आज हमें प्राप्त होती है तो उसी के आधार पर कुछ निर्णय कर लेते हैं । मोअन - जो - दड़ो के बारे में ऐसा ही हुआ है । पहले लोग विश्वास ही नहीं करते थे कि इस संसार में मोअन - जो - दड़ो एक सुसज्जित एवं वैभवशाली महानगर था । लेकिन भूगर्भवित्ताओं ने अनुसंधान किया । उन्हें उस जमाने के कुछ अवशेष मिले जिससे मोअन - जो - दड़ो की संस्कृति सामने आयी और इतिहास ही बदल गया ।

मोअन - जो - दड़ो का अर्थ है - मृत का स्थान । ' मुर्दों का टीला ' मोअन - जो - दड़ो का पर्यायवाची है । लगभग ई. पू. 3500 वर्ष उत्तर - पश्चिम में सलाम और सुमेरू, पश्चिम में मिश्र, उत्तर में सिंधु नदी के तट पर मोअन - जो - दड़ो की द्रविड़ी - सभ्यता अपनी चरम उत्कर्ष की सीमा पर थी । ' मुर्दों का टीला ' रचना द्वारा राघवजी ने उस काल के जीवन की गतिविधियों को एक महानगर की सीमाओं में आबद्ध कर इतिहास को सजीव रूप देने का प्रयास किया है । आर्यों के आक्रमण का काल इस महानगर के विनाश का काल रहा है । मोअन - जो - दड़ो की प्रागैतिहासिक घटना और द्रविड एवं आर्यों के परस्पर संघर्ष को उपन्यासकार ने द्रविड दृष्टिकोण से चित्रित करने का प्रयास किया है ।

द्रविड वैभवशाली, मूर्तिपूजक एवं सुसंस्कृत थे । आर्यों के आगमन से पूर्व मोअन - जो - दड़ो में गणतंत्र शासन प्रणाली थी । प्रत्येक नागरिक स्वतंत्र था । सुमेरू, एलाम, मिश्र, एवं मोअन - जो - दड़ो में घनिष्ठ व्यापार सम्बन्ध था । सुमेरू और मोअन - जो - दड़ो की चित्रलिपी में समानता है । दास - प्रथा भी यहाँ नहीं थी । लेकिन मिश्र के सम्पर्क से यहाँ दास - प्रथा प्रचलित हो गयी । आर्य बर्बर क्रूर एवं असभ्य थे । दास - प्रथा होते हुए भी मोअन - जो - दड़ो के नागरिकों को अपने प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार था । जैसे पुरोहित, गणपति, उच्चपदाधिकारी आदि की नियुक्ती इस महानगर की जनता द्वारा ही होती थी । यह अधिकार केवल दासों को नहीं था । दास- दासियाँ नीच जाति के होते थे । उन्हें अपने स्वामी का गुलाम बनकर तथा दासी नारियों को श्रेष्ठि, धनवानों की भोग्य वस्तु बनकर रहना पड़ता था । उस काल में नारी

को किसी भी तरह की स्वाधीनता नहीं थी । दास एवं नारियों का शोषण किया जाता था ।

आलोच्य उपन्यास की घटनाएँ तो प्रागैतिहासिक काल की है, लेकिन पात्र कल्पनाजन्य है । ' रांगेय राघव ने राहुल तथा यशपाल की भाँति गणतंत्र से शासित इस नगर के जीवन को गौरवमण्डित तो अवश्य किया है, परन्तु कल्पना प्रसूत पात्रों द्वारा मार्क्सवादी विचारों का उनकी तरह प्रचार नहीं किया है । वह ऐतिहासिक जीवन को मार्क्सवादी दृष्टी से आँकने का उपक्रम तो अवश्य करते है किन्तु स्वयं को पात्र बनाकर उसके द्वारा द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का प्रतिपादन करने में विश्वास नहीं रखते । " [21] डॉ. राघवजी ने प्राचीन काल की सभ्यता, संस्कृति के आधार पर पात्रों के नाम, उनके आपसी वार्तालाप, वेशभूषा, खान-पान, रीति-रीवाज, अंधविश्वास आदि का सुन्दर चित्रण किया है । वर्तमान समाज के सत्ताधिकारियों की धन लोलुपता, वैभवलालसा, कामपिपासा आदि सम्पूर्ण समाज को सर्वनाश की ओर ले जा सकती है । इस प्रकार का इतिहास मोअन - जो - दड़ो में पहले ही बीत चुका है । वही इतिहास दुहराया जा रहा है । सत् - असत् का संघर्ष, सत् का गला घोंटा जाता है तब प्रकृति स्वयं सत् की रक्षा के लिए अपना विकराल रूप धारण करके असत् का विनाश करती है ।

डॉ. राघवजीने आलोच्य उपन्यास में वर्तमान के यथार्थ को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे अंकित करने का सफल प्रयास किया है । इनकी यह रचना वर्तमान के लिए ही है । आलोच्य उपन्यास में उस युग के राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन चित्रण मे इतनी यथार्थता है कि मानो उपन्यासकार ने उस युग को नजदीक से देखा है, अथवा उपन्यास के सभी पात्रों ने उस जीवन को भुगता है ।

राघवजी ने मुठ्ठीभर अवशेषों के आधार पर तथा मोअन - जो - दड़ो महानगर की द्रविड सभ्यता विरोधी आर्यों का संघर्ष, साम्राज्यशाही का विरोध, महानगर का वैभव, विलास, दास-प्रथा, नारियों की दयनीय स्थिति, शासन प्रणाली, सत्ताधिकारियों द्वारा नागरिकों का शोषण, नागरिकों का

13779
A

विद्रोह, सभ्यता एवं संस्कृति का -हास, दैवी प्रकोप द्वारा विध्वंस आदि पर आधारित तथा ऐतिहासिक तथ्यों को कल्पना के सहारे तत्कालीन जन - जीवन का प्रागैतिहासिक रूप में यथार्थ बनाने की कोशिश राघवजी ने की है । प्रागैतिहासिक घटनाओं के आधारपर आलोच्य बृहत ऐतिहासिक उपन्यास ' मुर्दो का टीला ' का भवन खड़ा किया है ।

निष्कर्ष :

आँचलिक उपन्यासों में कोई भूखण्ड, उपेक्षित देहात तथा वहाँ के लोक जीवन का समग्र चित्रण रहता है । कभी - कभी उस भूखण्ड तथा गाँव में निवास करनेवाले पीड़ित, उपेक्षित, विशिष्ट जातियों का चित्रण होता है । ' कब तक पुकारूँ ' आँचलिक उपन्यास में राघवजी ने ' ' वैर ' गाँव के आसपास स्थित करनट जाति के जीवन का चित्रण किया है । सुखराम करनट द्वारा कहे गये तथ्यों को राघवजी ने एक सूत्र में बाँधकर पाठकों के सामने उस जातिका यथार्थ रूप खड़ा किया है । उच्चवर्ग के लोग इस पिछड़ी अशिक्षित, गँवार, नीच करनट जाति के लोगोंपर बेवजह जुल्म, अन्याय, अत्त्याचार, करते हैं । उनके साथ घिनौना बर्ताव करते है । इस उपन्यास के पृष्ठभूमि के अंतर्गत करनट जाति के रीति रीवाज प्रथा - परम्पराएँ, अंधविश्वास, कष्टमय जीवन - यापन नैतिक - अनैतिकता, नारी का यौन शोषण, आदि का समावेश है । अतः समय के साथ इस जाति में परिवर्तन जरूर हुआ है । सरकार ने इनकी सुरक्षा के लिए कानून बनवाया है । किन्तु आज भी इस जाति का शोषण हो रहा है । पेट के लिए इन्हें दर-दर भटकना पड़ता है । आज भी इनका जीवन असुरक्षित है । समाज इन्हें अपना नहीं सकता क्योंकि वे अछूत है । इन बातों को स्पष्ट करने के लिए आलोच्य उपन्यास का सर्जन किया है ।

ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक तथ्य ऐतिहासिक पात्र, वार्तालाप, वेशभूषा आदि का ओर ज्यादा ध्यान देना पड़ता है । इसमें से किसी एक को अनदेखा किया जाए तो उपन्यास का प्रभाव ही नष्ट हो जाता है । प्राचीन काल में आज की तरह इतिहास लिखने की सुविधा नहीं थी ।

अतः उस युग वस्तुओं को देखकर अनुमान लगाया जाता है । संसार में मोअन - जो - दड़ो जैसा महानगर था इस बातपर लोग यकिन नहीं कर लेते थे । किन्तु भूगर्भवित्ताओं के संशोधन द्वारा उस काल के कुछ अवशेष मिले जिससे मोअन - जो - दड़ो महानगर को जानने का प्रयास किया गया । सत्ता, अधिकार, वैभव की लालसा मनुष्य को विनाश की ओर ले जाती है । अति अन्याय, अत्याचारों को प्रकृति बर्दाश्त नहीं कर पाती । वह ऐसे अत्याचारियों को सजा देती है । उस युग की भाँति आज भी अधिकार प्राप्ति के लिए सत्य को समाप्त करने की कोशिश की जाती है । इसी सत्य को राघवजी ने दुहराया है । अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि राघवजीने प्रागैतिहासिक कुछ अवशेषों, घटनाओं के आधारपर मोअन - जो - दड़ो महानगर की संस्कृति, सभ्यता, सम्पन्नता, दास-प्रथा, परम्पराएँ, श्रेष्ठी लोगों की धन लोलुपता, सत्ता एवं काम लालसा, शासन प्रणाली, नारी का अस्तित्व एवं पराधीनता, आदि का चित्रण करके ' मुर्दो का टीला ' यह विशालकाय ऐतिहासिक उपन्यास लिखा है ।

संदर्भ

1) सम्पा. श्यामसुन्दर बी. ए. - हिंदी शब्द सागर पृ. 10 (प्रथम भाग)

2) सम्पा. पं. रामशंकर ' रसाल ' - भाषा शब्द कोश पृ. 8

3) सम्पा. रामचन्द्र वर्मा - मानक हिन्दी कोश पृ. 9 (पहला भाग)

4) सम्पा. जयशंकर जोशी - हलायुध कोश पृ. 111

5) डॉ. रामदरश मिश्र - हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, पृ. 188

6) डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत - शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, पृ. 432-33

7) आलोचना - अक्तूबर - 1957 परती परिकथा.

8) डॉ. शशिभूषण सिंहल - हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, पृ. 8

9) राधेश्याम वर्मा ' कौशिक ' - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का शिल्प - विकास. पृ. 54

10) मानविकी परिभाषा कोश (साहित्य खण्ड)

11) डॉ. विमलशंकर नागर - अस. आँचलिक उपन्यास : सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ, पृ. 16

12) डॉ. रांगेय राघव - ' कब तक पुकारूँ ', भूमिका.

13) वही

14) वही. पृ. 13

15) श्री. जगदीश गुप्त आलोचना, पृ. 178

16) डॉ. सुषमा धवन - हिन्दी उपन्यास, पृ. 332

17) रेल्फ फाक्स - उपन्यास और लोक जीवन (हिन्दी अनुवाद) पृ. 106-7

18) डॉ. जगदीश गुप्त - आलोचना विशेषांक अक्तूबर 1954.

19) डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी - ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना और सत्य, प्रस्तावना.

20) डॉ. रांगेय राघव - साहित्य - संदेश 1956, पृ. 87

20) डॉ. रांगेय राघव - आलोचना - 13, पृ. 80